प्रकाशित: 18 अगस्त 2018 दैनिक जागरण में प्रकाशित-

1980 में जब लगा नारा, 'प्रधानमंत्री की अगली बारी, अटल बिहारी, अटल बिहारी'

अरुण जेटली

अटल जी के निधन को तमाम लोग एक युग का अंत बता रहे हैं, लेकिन मेरे ख्याल से यह उस युग की निरंतरता ही है जिसके वह प्रवर्तक रहे। उनकी राजनीतिक यात्रा की शुरुआत छात्र जीवन में भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने से हुई। फिर वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जुड़े। उसके बाद डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के आह्वान पर भारतीय जनसंघ के संस्थापकों में से एक रहे। जनसंघ के शुरुआती दौर में वह 'कश्मीर सत्याग्रह' से जुड़े जिसका मकसद राज्य में भारतीय नागरिकों पर लगे तमाम प्रतिबंधों को हटवाना था।

डॉ. मुखर्जी के साथ ही वह भी लियाकत-नेहरू समझौते के घोर विरोधी थे। 1957 में एक युवा सांसद के तौर पर तिब्बत संकट और फिर 1962 में चीन से मिली पराजय पर संसद में उनके भाषणों ने सभी को प्रभावित किया। युवावस्था में ही वह जनसंघ का प्रमुख चेहरा बन गए। उन्होंने देश भर का दौरा किया और करिश्माई वक्ता की छवि हासिल की। प्रवास के दौरान अधिकांश मौकों पर वह कार्यकर्ताओं के घर पर ही

ठहरते थे। यह उस दौर की बात है जब एक नई पार्टी खड़ी हो रही थी। 1962 में जब चीन से मिली पराजय के बाद कांग्रेस से मोहभंग हो रहा था तब डॉ. लोहिया ने 'कांग्रेस हटाओ, देश बचाओ' के अभियान का बिगुल बजाया और उपचुनावों में पं. दीनदयाल उपाध्याय और आचार्य कृपलानी के साथ सीटों पर साझेदारी को लेकर बात शुरू की।

अपनी राजनीतिक टीम के साथ दीनदयाल जी एक नई पार्टी का सांगठनिक ढांचा खड़ा करने में जुटे थे। उनके साथियों में अधिकांश उम्र के तीसरे दशक में दाखिल युवा ही थे। 1967 में जनसंघ के कई सांसद चुने गए। दिल्ली में उसे पूर्ण बहुमत मिला। उत्तर प्रदेश , बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और पंजाब में पार्टी अपनी ठीकठाक मौजूदगी दर्ज कराने में सफल रही। दीनदयाल जी के असामयिक निधन से जनसंघ के नेतृत्व की बागडोर अटल जी के हाथ आ गई। पार्टी के मूल सिद्धांतों से समझौते किए बिना उन्होंने दूसरे दलों के साथ तालमेल किया और राष्ट्रीय स्तर पर जनसंघ के सम्मानित एवं स्वीकार्य चेहरा बन गए। वह दलगत हितों से ऊपर उठने में हिचकते नहीं थे और 1971 के युद्ध में इंदिरा सरकार को उनका समर्थन इसकी मिसाल थी।

अटल जी के नेतृत्व में जनसंघ के सहयोग से 1974 में जयप्रकाश नारायण के आंदोलन को बहुत मजबूती मिली। आपातकाल का विरोध और लोकतंत्र की पुनस्र्थापना को लेकर उनके नेतृत्व में जनसंघ ने लड़ाई लड़ी। जनता सरकार में कुछ समय के लिए सत्ता में भागीदारी भी मिली,

लेकिन वह प्रयोग विफल हुआ। फिर 1980 में जनसंघ का भाजपा के रूप में पुनर्जन्म हुआ और उद्घाटन सत्र में ही उत्साही कार्यकर्ताओं ने नारा दिया -'प्रधानमंत्री की अगली बारी, अटल बिहारी, अटल बिहारी।'

अपने शुरुआती दौर में भाजपा राजनीतिक छुआछूत की शिकार थी। 1984 के चुनाव में उसकी शुरुआत ही खराब रही। इससे हतोत्साहित हुए बिना अटल जी और आडवाणी जी की जोड़ी भाजपा के विस्तार को लेकर दृढ़संकल्पित रही। नतीजे में 1989 के चुनाव में भाजपा को लोकसभा की 89 सीटें मिलीं, जिनका दायरा 1991 में बढ़कर 121 हो गया। फिर यह आंकड़ा 1996 में 166 और 1998 में बढ़कर 183 तक पहुंच गया। अलग-थलग पड़ी भाजपा अब भारतीय राजनीति की मुख्यधारा की पार्टी बन गई थी। 1998 और 1999 में अटल जी के नेतृत्व में पार्टी को शानदार जीत मिली और प्रधानमंत्री के रूप में वह बेहद सफल रहे। उन्होंने भारतीय राजनीति में एक पार्टी के वर्चस्व को खत्म किया। भाजपा ने अपने सामाजिक एवं भौगोलिक दायरे में विस्तार किया।

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में अटल जी ने एक पार्टी के दबदबे वाली स्थिति में लोगों को राजनीतिक विकल्प दिया। आडवाणी जी के साथ मिलकर उन्होंने केंद्रीय और राज्य स्तर पर दूसरी पांत के नेताओं की फौज तैयार की। विचारों को लेकर वह बहुत खुले हुए थे। हमेशा राष्ट्र हितों को सर्वोपरि रखा। साथियों और विरोधियों के साथ सहज रहे और कभी भी बेवजह विवाद में नहीं फंसे। चूंकि वह निजी हमले के बजाय

मुद्दों पर ही बात करते थे इसलिए कोई उनसे बैर भी नहीं रखता था। शब्दों के वह ऐसे जादूगर थे कि अपनी वक्तृत्व कला से किसी भी मुश्किल हालात को मात दे सकते थे। संसद में जब वह बोलते तो चप्पा-चप्पा शांत हो जाता। रैलियों में उन्हें सुनने के लिए लोग घंटों पहले पहुंच जाया करते थे। हाजिरजवाबी में भी उनका कोई सानी नहीं था। वह मुश्किल चीजों को भी आसानी से समझा देते थे।

समय-समय पर गठबंधन में उनसे अलगअलग साथी जुड़ते रहे। केसी पंत और रामकृष्ण हेगड़े जैसे विरोधियों को भी उन्होंने साथ लिया। 1998 में परमाणु परीक्षण उनकी सरकार का निर्णायक क्षण था। पाकिस्तान के साथ शांति बहाली के भी प्रयास किए। कारगिल जैसी साजिश हुई तो उसका मुंहतोड़ जवाब भी दिया। आर्थिक मोर्चे पर भी वह बड़े सुधारक रहे। राष्ट्रीय राजमार्ग , ग्रामीण सड़कें, बेहतर बुनियादी ढांचा और नई व्यावहारिक दूरसंचार नीति और नया विद्युत कानून इसके प्रमुख उदाहरण हैं। सरकार के भीतर किसी भी चर्चा में वह हमेशा उदार आर्थिक दृष्टिकोण के हिमायती रहे। बदलते वैश्विक परिदृश्य में उन्होंने विदेश नीति को भी सही दिशा में मोड़ा।

प्रधानमंत्री के रूप में भी वह अपने मातहत मंत्रियों और नौकरशाहों पर कभी सख्त नहीं रहे। विनम्र, लेकिन दृढ़ लहजे में अपने मातहतों से वह अपनी बात मनवा लेते थे। उनकी कैबिनेट बैठकें घंटों तक

चलती थीं। वह हर एक मुद्दे पर चर्चा कराते और फिर विरोधाभासी विचारों को गुण-दोष के आधार पर परखते। खान-पान के भी बड़े शौकीन थे। उनके भीतर मौजूद कवि ने उन्हें स्वप्नदर्शी बनाया। उनकी कविताओं की तमाम पंक्तियां उनके मिजाज का ही प्रतिबिंब हैं।

आपातकाल के दौरान कमर में तकलीफ के उपचार के लिए उन्हें एम्स ले जाया गया। डॉक्टर ने पूछा कि क्या आप झुक गए थे? दर्द में भी उनका हास्यबोध कायम था। उन्होंने आपातकाल के संदर्भ में जवाब दिया, 'झुकना तो सीखा नहीं डॉक्टर साहब , मुड़ गए होंगे। ' इसी विचार से उन्होंने अस्पताल बेड पर ही 'टूट सकते हैं, मगर झुक नहीं सकते' जैसी आपातकाल विरोधी कविता लिखी जो उस दौर में बहुत लोकप्रिय हुई। अटल जी सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक थे। उनकी राजनीतिक शैली उदार थी। वह आलोचना को स्वीकार करते थे। संसदीय लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में पगे हुए होने के कारण आमसहमति की कद्र करते थे। किसी से कोई द्वेष नहीं रखते थे। असहमति रखने वालों से भी संवाद करते थे। विपक्ष में रहे हों या सत्ता में उनका रवैया कभी नहीं बदला। वह ऐसे प्रतिष्ठित ओजस्वी वक्ता थे जिनकी हालिया इतिहास में मिसाल मिलना मुमकिन नहीं।

साख उनकी सबसे बड़ी थाती थी। नेहरूवादी कांग्रेस के दबदबे वाले दौर में उन्होंने ऐसी वैकल्पिक राजनीतिक धारा बनाई जो न केवल

कांग्रेस का विकल्प बनी, बल्कि उससे कहीं आगे निकल गई। धैर्य के मामले में अटल जी मैराथन धावक थे। अटल जी भले ही इस दुनिया से विदा हो गए हों , लेकिन उन्होंने जिस दौर की बुनियाद रखी वह आगे और समृद्ध होता जाएगा।

(लेखक केंद्रीय वित्तमंत्री हैं)